



INTERNATIONAL JOURNAL OF TRENDS IN EMERGING RESEARCH AND DEVELOPMENT

INTERNATIONAL JOURNAL OF TRENDS IN EMERGING RESEARCH AND DEVELOPMENT

Volume 4; Issue 3; 2026; Page No. 223-228

Received: 17-03-2026

Accepted: 23-04-2026

Published: 17-05-2026

सुशीला टाकभौरे की कहानियाँ में दलित स्त्री चेतना का अध्ययन

¹हेमलता और प्रो. (डॉ.) राजीव कुमार झा

¹शोधार्थी, हिन्दी विभाग भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

²एच. ओ. डी. (स्नातकोत्तर हिंदी विभाग) लंगट सिंह महाविद्यालय (एल. एस. कॉलेज) मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

DOI: <https://doi.org/10.5281/zenodo.22655489>

Corresponding Author: हेमलता

सारांश

सुशीला टाकभौरे हिन्दी साहित्य की उन अग्रणी लेखिकाओं में से हैं जिन्होंने दलित और स्त्री विमर्श के द्वंद्व को अपनी रचनाओं के माध्यम से सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। वे केवल एक कथाकार नहीं बल्कि एक विचारक, समाज-सुधारक और संवेदनशील साक्षी हैं, जिन्होंने समाज के हाशिये पर पड़ी दलित स्त्रियों के जीवन की पीड़ा, संघर्ष, अपमान और आत्म-सम्मान की लड़ाई को शब्दों में रूपायित किया। उनकी कहानियाँ केवल साहित्यिक कृतियाँ नहीं, बल्कि समाज के यथार्थ का दस्तावेज़ हैं, जिनमें दलित स्त्री की चेतना, उसकी अस्मिता की खोज और न्याय के लिए उसका प्रतिरोध, तीव्र मानवीय संवेदना के साथ प्रकट होता है। सुशीला टाकभौरे की कहानियों का मुख्य केंद्र दलित स्त्री का जीवन है — वह स्त्री जो जातिगत और लैंगिक दोनों प्रकार के शोषण का शिकार है। दलित पुरुष की तरह उसके पास भी संघर्ष की लंबी परंपरा है, परन्तु उसके संघर्ष की पीड़ा दुगुनी है। टाकभौरे की कहानियाँ इस दोहरे शोषण को उद्घाटित करती हैं। वे दिखाती हैं कि किस प्रकार दलित स्त्री जाति के आधार पर समाज में उपेक्षित है, और स्त्री होने के कारण घर और परिवार में भी उसे समानता का अधिकार नहीं मिलता। उनकी कहानियों की नायिकाएँ समाज द्वारा थोपी गई सीमाओं को तोड़कर अपनी पहचान गढ़ने का प्रयास करती हैं। यही प्रयास दलित स्त्री चेतना का मूल तत्व है।

मूलशब्द: सुशीला टाकभौरे, कहानियाँ, दलित स्त्री चेतना, स्त्री विमर्श, समाज-सुधारक, आत्म-सम्मान, साहित्यिक कृतियाँ, मानवीय संवेदना

प्रस्तावना

भारतीय समाज की विसंगतिवादी प्रवृत्ति के कारण सभी वर्गों का समान रूप से विकास नहीं हो पाता क्योंकि उनको एकसमान विकास के साधन उपलब्ध नहीं हो पाते। सभी संसाधनों पर कुण्डली मारकर बैठा सर्वर्ण समाज दलित समाज का खुलकर शोषण करता रहा है और दलितों के विकास-मार्गों को अवरुद्ध भी करता है। हजारों सालों से गंदगी और असुविधाओं में रहकर हाशिये की जिन्दगी जीने वाला यह दलित समाज इस तथाकथित सर्वर्ण समाज का शिकार ही होता रहा है। भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्रियों की स्थिति और भी खराब है। दलित स्त्रियाँ अनेक स्तरों पर शोषण का शिकार होती रही हैं। उनको घर से लेकर बाहर तक अनेक प्रकार की बंदिशों का सामना ही करना पड़ता है। वे अनेक कारणों से मौन ही रहती चली आ रही थीं लेकिन भारतीय संविधान उनको सशक्त करता है और उनकी मजबूती की बात करता है। इसी कारण से स्त्री वर्ग में विकास की

चेतना का प्रसार हुआ है और वे उन्नति के प्रमुख हथियार शिक्षा के द्वारा अपने विकास में लगी हुई हैं। सदियों से शोषण और उत्पीड़न सहने वाला दलित-स्त्री वर्ग अब समाज में अपने अधिकारों और जिम्मेदारियों को समझने लगा है। जिन अभावों के कारण वह गुलामों की जिन्दगी जी रही थी उन्हें नकारकर वह समतावादी मूल्यों के आधार पर कदम बढ़ा रही है और पुरुष-वर्ग के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर कार्य करने के लिए प्रयासरत है। दलित साहित्य का इस समतावादी विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। वह सामाजिक विसंगतियों को न केवल रेखांकित कर रहा है बल्कि उनके समाधान भी तलाश रहा है। यह साहित्य अपनी सभी विधाओं में दलित वर्ग और दलित-स्त्री के सशक्तीकरण की बात करता है। इस दिशा में दलित कहानियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। सुशीला टाकभौरे के सभी कहानी-संग्रहों में एक सशक्त स्त्री की छवि को देखा जा सकता है जो सामाजिक समता के लिए संघर्षशील है।¹

दलित जीवन और स्त्री-शिक्षा की चेतना

दलित समाज सदियों से वंचित रहा है। दलित समाज में अनेक समस्याएँ हैं लेकिन उसमें अशिक्षा प्रमुख है। शिक्षा के बिना किसी भी प्रकार के विकास की बात करना गलत होगा। किसी भी समाज में शिक्षा के माध्यम से विकास की संभावनाओं को बढ़ाया जा सकता है। इसी शिक्षा के द्वारा दलितों और वंचितों का भी विकास किया जा सकता है। दलित महिलाओं को सशक्त बनाने में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। दलित समाज अनेक प्रकार की विसंगतियों और समस्याओं से ग्रस्त है और उससे बाहर निकलने का सबसे मजबूत और टिकाऊ रास्ता शिक्षा का ही है। शिक्षा न केवल आर्थिक विकास की संभावनाओं को बढ़ाता है बल्कि समाज के अन्य वर्गों के साथ सामाजिक और आर्थिक स्तर पर साथ-साथ चलते रहने के लिए आवश्यक मजबूती भी प्रदान करता है। यह बदलते सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक और पर्यावरणवादी परिस्थितियों में संतुलन बनाने में कारगर साबित हो रही है। शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा समाज में घटित होने वाली खबरों का आदान-प्रदान होता है और सदियों से शिक्षा और ज्ञान से वंचित वर्ग अपने समाज विशेष की ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त कर पा रहा है। आज़ादी के बाद के भारत में दलित वर्ग में शिक्षा के द्वारा विशेष रूप से परिवर्तन देखने को मिलता है और इस कार्य में भारतीय संविधान महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। दलित समाज के परिवर्तन में दलित साहित्य का विशेष योगदान है।¹²

दलित साहित्य दलित समाज को सशक्त करने का महत्वपूर्ण हथियार है। यह अनेक विधाओं के माध्यम से अपने मंतव्य को व्यक्त करते हुए दलितों और वंचितों को मजबूती प्रदान कर रहा है। कहानी भी एक ऐसी ही विधा है जो दलित समाज को चेतना प्रदान करती है और विभिन्न सामाजिक विसंगतियों को उजागर करती है। साहित्य में कहानी विधा अन्य सभी विधाओं से कहीं ज्यादा प्रभाव पाठक पर डालती है। यह अपने शुरुआती दौर से ही समाज को जागरूक करने का प्रयास करती रही है। दलित जीवन को आधार बनाकर लिखी गयी कहानियों में भी यह विशेषता देखने को मिलती है। दलित कहानी लेखन के क्षेत्र में जिन दलित लेखकों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, दयानंद बटोही, डॉ. एन. सिंह, मोहनदास नैमिश्राराय, अनीता भारती, रजतगनी मीनू, मुशीला टाकंभीर, हेमलता महेश्वर और कावेरी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने कथा साहित्य से दलित समाज में जागृति फैलाई है। दलित साहित्य के लेखन का आधार दलित जीवन की पीड़ाएँ हैं और यह दलित कहानियों में भी दिखाई देता है। दलित कहानियों के केंद्र में दलित जीवन की समस्याओं के साथ जागरूकता का भी प्रचार-प्रसार है। दलित स्त्री के दर्द को साहित्यिक रूप देने के लिए दलित समाज के महिला वर्ग को लेखन-कार्य में आगे आना होगा। भोगा हुआ यथार्थ दलित जीवन का सत्य है तो यह भी सही है कि स्त्री के दर्द को भी स्त्री ही सही मायनों में व्यक्त कर पायेगी न कि दलित समाज का पुरुष। उसे अपने दर्द को स्वयं ही लिखना होगा "जब तक दलित वर्ग स्वयं साहित्य नहीं रचता है तब तक वह किसी न किसी रूप में दलित बना रहेगा। अगर दलित वर्ग का कोई उद्धारक हो सकता है, तो स्वयं दलित हो सकता है, दलितेतर नहीं।"। कोई भी साहित्य-कृति युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होती है। साहित्यकार भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में अपनी परिस्थितियों से चेतना ग्रहण करके साहित्य का सृजन करता है। स्त्री-मुक्ति आंदोलन में स्त्री-जीवन की समस्या, पीड़ा, अपमान, शोषण, बलात्कार आदि चित्रित है। सुशीला टाकंभीर का 'संघर्ष' कहानी-संग्रह बलात्कारी प्रवृत्ति की संवेदना पर आधारित है। जब

कोई प्रसंग या घटना लेखिका के मन को छू लेती है तब इन कहानियों का जन्म होता है। उनकी कहानियों में प्रमुखता से स्वयं का जीवन उभरकर सामने आया है, जो नारी संवेदना को प्रस्तुत करता है। सुशीला टाकंभीर दलित लेखिका हैं जो अपने युग की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, समस्याओं से अत्यंत प्रभावित हैं।¹³ 'अनुभूति के घेरे' कहानी-संग्रह में 'भूख', 'त्रिशूल', 'सांरग तेरी याद में', 'दिल की लगी', 'हमारी तेल्मा', 'गलती किसकी है', 'सही निर्णय', 'सूरज के आसपास', 'टुकड़ा-टुकड़ा शिलालेख' आदि कहानियाँ संग्रहित हैं। 'अनुभूति के घेरे' की सभी कहानियाँ स्त्री-जीवन की समस्याओं पर लिखी गई हैं। जहाँ नारी मनुवादी अवधारणा के आधार पर क्षमा, त्याग, करूणा, ममता, दया, परोपकार आदि सद्भावों से परिपूर्ण आदर्श रूप है। वहाँ उनके अधिकार नहीं केवल कर्तव्य ही कर्तव्य हैं। इन कहानियों के माध्यम से स्त्री की पीड़ाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। दूसरा कहानी संग्रह 'टूटता वहम' है जिसमें 'मेरा बचपन', 'झरोखे', 'मेरा समाज', 'टूटता वहम', 'मंदिर का लाभ', 'व्रत और व्रती', 'धूप से भी बड़ा' आदि कहानियाँ संग्रहित हैं। 'टूटता वहम' कहानी-संग्रह में पिछड़ी दलित जाति से जुड़ी कहानियाँ हैं। इन कहानियों से पता चलता है कि समाज इतना आगे बढ़ जाने के बाद भी जाति का दंश दलितों के लिए आज भी बना हुआ है। अब तो सब कुछ बदल रहा है, सवर्ण शूद्र के आपसी सम्बन्ध बदल रहे हैं, जो सवर्ण पहले छूने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे वे अब शिक्षित सहकर्मी शूद्र अछूतों के हाथों में हाथ रखकर बातें करने लगे हैं। लेकिन फिर भी सवर्ण समाज के कुछ लोग अभी भी दलितों को अपने समान न मानकर वर्णभेद को किसी न किसी रूप में बनाए रखना चाहते हैं। इस कहानी संग्रह में समाज की ऐसी मानसिकता पर प्रहार किया गया है। तीसरा कहानी संग्रह 'संघर्ष' है। इसमें 'संघर्ष', 'जन्मदिन', 'छोआ मां', 'नई राह की खोज', 'संभव-असंभव', 'बदला और 'दमदार' आदि कहानियाँ संग्रहित हैं। 'संघर्ष' कहानी-संग्रह में दलितों के जीवन का संघर्ष चित्रित है। भारतीय समाज में दलित पिछड़ी कुछ जातियाँ ऐसी भी हैं जो गांधीवादी विचारधारा से ग्रसित होने के कारण आज भी अम्बेडकरवादी विचारधारा को नहीं समझ पाई हैं। इस कारण वे प्रगति और परिवर्तन से आज भी बहुत दूर हैं। ये आज भी अपने सनातनधर्मी विचारों के कारण अज्ञान और भ्रम के अंधेरे में भटक रहे हैं। समय के साथ शताब्दियाँ बीत रही हैं मगर दलित जातियों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हो पा रहा है। 'संघर्ष' कहानी संग्रह से दलित पिछड़े समुदाय तक अम्बेडकरवादी विचारधारा का मंदेश पहुँच रहा है। दलित समुदाय भी प्रगति और परिवर्तन के साथ-साथ सम्पत्ता सम्मान का जीवन जी सकेंगे। अपना वर्तमान अच्छा बनाकर आनेवाली पीढ़ियों के वर्तमान और भविष्य के लिए विचार कर सकेंगे। यही 'संघर्ष' कहानी संग्रह का उद्देश्य है।¹⁴

दलित स्त्री की सामाजिक चेतना

दलितों में अशिक्षा के कारण संगठन और संघर्ष का अभाव होने से उनका लाभ सवर्ण उठाते हैं। दलित जातियाँ एक दूसरे को निम्न समझती हैं। एक दूसरे से भेदभाव करती हैं। अगर दलित जातियाँ मिलकर एक हो जाएँ तो उससे एकता मजबूत होगी और दलितों का कोई शोषण नहीं कर पायेगा एवं न ही उनपर अत्याचार कर पाएँगे। धीरे-धीरे दलित भी अपना संघठन बना रहे हैं। वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रहे हैं। इन सन्दर्भों को दलित साहित्य में उठाया गया है। दलित साहित्य दलित समाज को अंधेरे से उजाले की ओर ले जाने के लिए प्रयासरत है। वह 'जाति' और

'वर्ण' की आड़ में छिपे प्रत्येक कालेपन को दूर करके दलित समाज को समतावादी और मानवतावादी साफ़-सुथरा रूप देने का हिमायती है। इस आधार पर हरेक दलित साहित्यकार ने कार्य किया है। यह चेतना सुशीला टाकभौरे के साहित्य में भी दिखाई देती है। उनके सभी कहानी संग्रह इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि दलित साहित्य दलित समाज को एक नई रोशनी देता है जिससे वे जीवन को नये तरीके से जीने का प्रयास करते हैं जो कि सामाजिक स्तर पर समतावादी मानवीय मूल्यों पर आधारित होता है। 'बदला' शीर्षक कहानी में कल्लू को जब सवर्ण मिलकर मारने आते हैं तो कल्लू और कल्लू के पड़ोसी सब एक हो जाते हैं- "छोआ माँ हमारी माँ हैं। छोआ माँ की बेटी हमारी बहन है। हमारे रहते इनको कोई हाथ भी नहीं लगा सकता। हम मिलकर रहेंगे तो हमारी ताकत बनेगी। एकता से ही हम दुश्मनों से बदला ले सकते हैं।"⁵

दलितों को कमजोर समझकर ही उनको सताया जाता है, लेकिन अब दलित कमजोर नहीं हैं। कल्लू को मारने आये सवर्ण लोग दलितों के मुहल्ले के लोगो को इकट्ठा देखकर भाग जाते हैं। अपने विरुद्ध इतने लोगों के हाथों में लाठियां देखकर उनके होश उड़ गये। उन्हें कल्पना नहीं थी कि गरीब तबके के निम्न कहलाने वाले लोग भी कभी एक हो सके हैं? अपनी जान बचाकर भागने में ही भलाई समझी। पिटते हुए, लाठियों से बचते हुए वे वहां से भाग निकले। अब दलित समझ गये हैं कि गाँधी से काम नहीं चलेगा। किसी ने एक गाल में थप्पड़ मारा तो दूसरा गाल करे लो दूसरे थप्पड़ के लिए। जब कि बाबा साहब कहते हैं किसी ने एक मारा तो तुम भी उसको मारो क्योंकि फिर वह दुवारा से कभी हिम्मत नहीं करेगा किसी को मारने के लिए। सच्चे मार्गदर्शक दलितों के हितेपी बाबा साहब आंबेडकर ही हैं। दलितों को शिक्षा से दूर रखा गया क्योंकि वे सही गलत को समझ ही न पाये लेकिन दलितों ने जब से शिक्षा रूपी हथियार अपनाया है वे सही गलत समझ गये हैं। दलितों ने अपना एक अलग ही संगठन बना लिया है जिसे कई दलितों को मदद मिल रही है। दलित जितना डरते हैं उनको उतना ही डराया जाता है 'कल्लू को कहीं बाहर भेज दो, उसका यहाँ रहना ठीक नहीं है।' समय बदल रहा है साथ ही दलितों की सोच भी। दलित एकता अब मजबूत है। दलित अब भागने के बदले उसका मुकाबला करने लगे हैं। कल्लू की माँ कहती हैं 'मेरा बेटा कहीं नहीं जायेगा। उसकी कोई गलती नहीं है। बप्पा बोले "अब मैं देखूंगी, कौन उसे हाथ लगाता है। मेरा बेटा अब किसी से नहीं डरेगा। हम भी उनसे बदला लेंगे। दलित अब किसी से नहीं डरते हैं छोआ... हम भी ईट का जबाब पत्थर से देंगे। वे शेर तो हम सवाशेर बनकर रहेंगे। एक दिन ऐसो आयेगो कि लोग हमसे डरेंगे। मेरो कल्लू इसी गाँव में रहेगो, शेर बनकर।" ज्ञान दूर रखकर ही दलित समाज को लंबे समय तक सच के बाहर रखा गया और कभी दलितों ने ज्ञान की परंपरा से जुड़ने की कोशिश की तो या तो उन्हें रास्ते से हटा दिया गया अथवा इस तरह अपमानित व उत्पीड़ित किया गया जैसे एकलव्य के साथ द्रोणाचार्य जैसे शिक्षकों ने किया। वास्तविक चिंता दलितों दलित समाज को पराधीनता की उन परंपराओं से मुक्ति दिलाने के लिए है। जिसने उन्हें सदियों से भारतीय समाज की मुख्यधारा में 'अस्पृश्य' और कमजोर बनाये रखा। लेकिन आज दलित समाज ने महापुरुष बाबा साहब आंबेडकर को पहचान लिया है जन्मदिन कहानी का एक पात्र मुन्ना ने निश्चय किया-मैं बाबा साहब के कार्यों और विचारों से अपनी बिरादरी को परिचित कराऊँगा, उन्हें सच्चाई का ज्ञान कराऊँगा" आज दलित कानून की मदद से अपनी सुरक्षा पा रहे हैं। जातिगत आधार पर दलितों के साथ भेदभाव दिया जाता है। क्योंकि सवर्ण

लोगों की ऊँची पकड़ रहती है। सारे थाना-कचहरी, पुलिस, वकील, जज सब उनके हैं। अपनी कौन सुने..? इन बातों को सुनकर छोआ माँ और उसकी बेटी बहुत डर गयी थी। उच्च वर्ण के लोगों में जातीय घमंड होने के कारण दलितों पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार करते हैं। कहानी की दलित स्त्री छोआ माँ के साथ अन्याय किया जाता है। 'संघर्ष' कहानी में लेखिका ने एक मामान्य दलित छात्र की पीड़ा को प्रस्तुत किया है। इस कहानी का नायक शंकर है। शंकर को अपने स्कूल में स्वर्ण शिक्षक और छात्रों की ओर से जाति के कारण भेदभाव सहना पड़ता है तथा मानसिक पीड़ा झेलनी पड़ती है। उसका प्रस्तुतीकरण 'करना ही कहानी का महत्वपूर्ण प्रतिपाद्य रहा है। एक दिन शंकर ने सड़क के किनारे के सरकारी बंगले से आगे के जामुन के पेड़ पर पत्थर मारे। जामुन के पेड़ के पास कुंडी तेलन का घर है। उसका बाया हाथ जनम से ही ठठा है। जामुन पर पत्थर मारने से कुछ पत्थर तेलन के घर के ऊपर गिरा। वह घर के बाहर निकालकर चिल्लाई। उसने शंकर को खूब गालियों बकी "मरई खाये.. ठठरी-बंधे.. जामुन पे पत्थर मारे है। पत्थर हमरे घर पे गिरे है। केवल फूट रहे है। तेरो बाप खरीद देयगों हमें?.. शनीचर कहीं के.. इसके पेट में आग लगे। सारी दुनियाँ की जामुन छोडकर इसी जामुन पे आँखर रखे है।.. नानी है तो सारे गाँव का गू.. मूत करती फिरे और इसको मस्ती चढी है।.. इसका नाश हो जाये।" "आम के दिनों में भी शंकर आम पर चढता है, तब रखवाला राजाराम डंडा लेकर दौडता आता है। शंकर को गालियाँ देते हुए उन्होंने बहुत कुछ कहा इसका चित्रण लेखिका ने किया है। शंकर तब तक आम के पेड़ से कूदकर भाग गया। राजाराम चिल्लाते हुए कहता रहा.. स्कूल में जाकर यही सीखता है? ठहर जा.. तेरे मास्टर को जाकर बताऊँगा। अपनी जाति की औकात की सीमा में नहीं रहता। अभी यह हाल है तब आगे चलकर पता नहीं क्या करेगा? इसी तरह की जातिभेद और उच्च-नीचता के कारण उन्हें बहुत मानसिक पीड़ा सहनी पड़ती है। इसका चित्रण किया है। समाज व्यवस्था में जाति ऐसी चीज है, जो इन्सान के मरने के बाद भी नहीं जाती है। चाहे गाँव हो या शहर जातिभेद की भावना लोगों के दिमाग से जाती नहीं है- "बेटा मैंने शुरु से यही काम किया है सभी जाने है कि मैं कौन हूँ। अब मैं यह काम छोड देऊ तो क्या मेरी जाति बदल जायेगी? जो जाति है वह तो वही रहेगी। काम करो चाहे न करो.. कहलायेंगे हम भंगी ही.. तात्पर्य जातीय संबोधन से सवर्ण लोग निम्न जातियों को अपमानित करते हैं। साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि जाति की दीवार बहुत कठिन और मजबूत हैं जिसे हम हिला नहीं पाये है।"⁶

स्त्री अस्मिता की पहचान और व्यक्तिक सत्ता के लिए संघर्ष

समाज में समता-एकता का निर्माण हो, सभी को समान रूप से स्वतंत्रता और सम्मान प्राप्त हो, इसका निर्माण और निरीक्षण करना प्रत्येक नागरिक की जिम्मेदारी है। यदि हर व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी पूर्ण करता है, तब समाज में कोई भी शोषित-पीड़ित नहीं होगा। 'बलात्कार' शब्द पढ़ते या सुनते ही जेहन में एकदम से एक स्त्री की तस्वीर कौंधती है- पुरुष द्वारा जबरन नोची-खसोटी गई, क्षत-विक्षत और लहू-लुहान स्त्री। बलात्कार में केवल यौन उत्पीड़न ही नहीं होता अपितु यह सामाजिक अपमान और मानसिक यंत्रणा का भी कारण बनता है कि बलात्कार का दर्द क्या होता है। यह बलात्कार की शिकार स्त्री और उसका परिवार ही जानता है। पुरुष द्वारा स्त्री के साथ बलात्कार अथवा यौन शोषण का इतिहास शायद उतना ही पुराना है जितना पुराना मानव-सृष्टि के विकास का इतिहास। हमारा इतिहास इस तरह की अनेक घटनाओं से भरा पड़ा है जिनमें किसी राजा द्वारा अपने या किसी

दूसरे राज्य की किसी सुंदर स्त्री या कुमारी को जबरन रानी बनाकर अपने हरम में शामिल किया गया है। इतिहास में उल्लेखित अनेक युद्ध केवल इसी बात को लेकर हुए हैं। जयप्रकाश कर्दम की दृष्टि को देखें तो यह कहना और मानना शायद अन्यथा नहीं होगा कि स्त्री केवल योनि है। स्त्री के प्रति पुरुष की आसक्ति, प्रेम और आवेग सबके पीछे योनि है। किंतु यह धारणा पूर्णतः सत्य नहीं है। क्योंकि यदि ऐसा होता तो सुंदर त्रियों के साथ सबसे ज्यादा बलात्कार होते। जबकि यथार्थ में ऐसा नहीं है। बलात्कार की अधिकांश घटनाएं गरीब, मजदूर, दलित-आदिवासियों स्त्रियों के साथ होती हैं जिनमें न कोई चटक-मटक होती है, न बनाव-शृंगार, न कोई सेक्स अपील। जबकि यह सबकुछ गैर-दलित या सवर्ण स्त्रियों में होता है। यदि रूप-रंग, शरीर गठन और बनाव-शृंगार कामोत्तेजना पैदा करते हैं और पुरुष जो अपनी कामोत्तेजना पर नियंत्रण नहीं रख पाते और बलात्कार पर उतर आते हैं तब बलात्कार सवर्ण स्त्रियों के माथ ही होने चाहिए थे। उनमें सेक्स अपील है। लेकिन विडंबना यह है कि बलात्कार उनके साथ न होकर मैली-कुचेली, रेत-मिट्टी में सनी साधारण सी दलित-आदिवासी त्रियों के साथ अधिक होते हैं। इसके दो कारण दिखाई देते हैं- एक तो यह कि सवर्ण मामंत समाज दलितों को अपना गुलाम समझता है और इसलिए दलित-आदिवासी स्त्रियों के साथ सहवास करना अपना अधिकार समझता रहा है। दलित आदिवासी स्त्रियों द्वारा सहवास के लिए सहमत नहीं होने पर ही उनके साथ जबरन यौन-अत्याचार किया जाता है। सवर्ण स्त्रियों के साथ बलात्कार नहीं होता है तो इसका कारण यही हो सकता है कि वे स्वेच्छा से यौन संबंध बनाने के लिए तैयार हो जाती होंगी इसलिए बलात्कार की नौबत नहीं आ पाती। ऐसा देखा भी गया है कि सवर्ण त्रियों के घर-कुनवे या जाति-रिश्तेदारों की बात तो छोड़िए उन्होंने अपने घर-खेतों में काम करने वाले दलित पुरुषों के साथ संबंध बनाकर खूब यौन सुख भोगा है और संतानें पैदा की हैं।

दलितों का हित केवल इसमें है कि वे किसी के नेतृत्व में चलने या उस पर निर्भर रहने की बजाए स्वाभिमान के साथ उत्पीड़न के खिलाफ स्वयं संघर्ष करें। 'शर्त' कहानी में पानाराम मेहतर की बेटी के साथ गांव के मुखिया जसवीर सिंह का लड़का बलात्कार करता है। मामला ज्यादा तूल नहीं पकड़े, इसलिए मुखिया, पानाराम को कुछ दे-दिवाकर सुलह-समझौता करना चाहता है। लेकिन पानाराम एक शर्त रखता है, "मुखिया साहब इज्जत का सवाल है यह। आपकी इज्जत सो मेरी इज्जत। आपकी लड़की हमारे समाज के किसी लड़के के साथ एक रात बिताएगी। 'प्रतिकार' कहानी में सुन्नर पांडे गेंदवा चमारी के साथ बलात्कार करने की कोशिश करता है लेकिन गेंदवा प्रतिकार करती है और सुन्नर पांडे द्वारा ज्यादाती करने से बाज न आने पर उसका लिंग काट देती है। यह कहानी इस बात की ओर इंगित करती है कि दलित स्त्रियों के लिए अपनी अस्मिता कितनी महत्वपूर्ण है। वे सहज-सुलभ नहीं है जैसा कि उनके बारे में प्रचारित है।¹⁷

श्रम, आर्थिक स्वतंत्रता और दलित स्त्री-जीवन

सदियों से शोषित दलित समाज भारतीय समाज की एक कड़वी सच्चाई रहा है। उसके अनेक प्रकार से पीड़ित होने का मुख्य कारण यह भी था कि वह पेट भरने के लिए भी पर्याप्त संसाधन नहीं जुटा पाता था और उसके मूल में था-भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था प्रणाली। यही वह व्यवस्था थी जिसको आधार बनाकर दलितों का शोषण किया जाता रहा, उन्हें बंधुआ मजदूरों की तरह रखा जाता रहा और बेगार कराया जाता रहा। जिन्दा रहने के लिए

अनिवार्य वस्तु भोजन भी उनके हिस्से में मयस्सर नहीं होता था। ऐसे में उनके आज़ादी की बात करना और उनका शोषकों के सामने खड़े हो पाना किन आधारों पर हो पाता। आज़ादी के बाद के भारत में एक अलग तरह का सामाजिक समीकरण दिखाई देता है जिसमें भारतीय संविधान कि छाया स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। भारतीय सरकारों ने दलित और वंचित वर्ग के लिए अवसर पैदा करने के लिए आरक्षण नीति लागू की जिससे दलितों की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार देखने को मिलता है। यह प्रभाव दलित समाज की स्त्री वर्ग पर भी देखा जा सकता है। समाज में घटित हो रही घटनाओं को साहित्य में भी स्थान दिया जाता है। दलित साहित्य में दलित समाज के प्रतिरूप को देखा जा सकता है। दलित समाज की अनेक समस्याएँ और उनके संभावित समाधान भी इस साहित्य में देखे जा सकते हैं। दलित समाज को सदियों के दलदल से निकलने के लिए शिक्षा और संगठन की बहुत आवश्यकता है और दलित साहित्य के माध्यम से इस तथ्य का प्रचार प्रसार हो रहा है।¹⁸

सुशीला टाकभौरे ने 'सिलिया' कहानी द्वारा शोषण का चित्रण अत्यंत मार्मिक ढंग से किया है। सिलिया कहानी में गाडरी मुहल्ला के जिस कुए से मालती ने पानी निकालकर पिया था, वहाँ से बीच-पच्चीस कदम पर मामा मामी का घर है। जिसकी रस्सी बाल्टी और कुएँ को छुकर मालती ने अपवित्र कर दिया था वह औरत बकरियों के रेवड पालती है। गाडरी मुहल्ले के अधिकांश घरों में भेड़ों बकरियों का पालने बेचने का व्यवसाय किया जाता है। सुशीला टाकभौरे के कहानियों में निम्न जाति के लोग अशिक्षा अज्ञान के कारण वह समाज व्यवसाय विहीन है। उनके पूर्वजों का जो निम्न रूप के कार्य होते हैं वही वे करते आ रहे हैं। इसका रूप 'छौआ माँ' शीर्षक कहानी में भी दिखाई देता है। कोई भेड़ पालता है, कोई दाई माँ का काम करता है, कोई मजदूरी करता है, एवं कोई हमाली करता है, इन सभी व्यवसाय विहीन समाज का चित्रण उनकी कहानियों में मिलता है। अशिक्षा, अज्ञान, बेरोगजगारी के कारण दलित वर्ग और निम्न वर्ग के लोग उच्चवर्गीय लोगों के घर में ऐसे काम करते हैं। याने यह समाज व्यवसाय-विहीन है इसका चित्रण किया गया है। सुशीला टाकभौरे ने सामाजिक धार्मिक समस्याओं के साथ-साथ आर्थिक समस्याओं का भी चित्रण कहानियों के माध्यम से किया है। दलित समाज में भंगी, महार, मातंग, चमार आदि समाज में गरीबी का विदारक रूप दिखाई देता है। 'संघर्ष' कहानी में शंकर का परिवार गरीबी में जीता आ रहा है। उसकी नानी गाँव में सफाई का काम करती है। और लोग उन्हें जूठा खाना देते हैं। शंकर को उनके दोस्त चिढाते हैं- शंकर तू तो वडा होशियार है रे...। क्यों रे शंकर तू किम चक्की का आटा खाता है.....? उनकी इन बातों पर दूसरे लोग हँसते हैं और शंकर को बहुत दुख होता है। क्योंकि, शंकर की नानी उसके आँखों के सामने गाँव की बस्ती की रोटियों और जुठन लाती है। गरीबी के कारण उन्हें इसी पर गुजारा करना पड़ता है। 'छौआ माँ' जैसी कहानियों में भी गरीबी का चित्रण दिखाई देता है। पेट पालने के लिए माँ दाई माँ का काम करती है। और लोग उन्हें लुगडे के आंचल की बंधी ओली में आधा सेर के करीब गेहूँ देते हैं। कभी चवन्नी, नई साडी नगद रुपये, चिल्लर देते हैं। कभी दो पैसा। लोग उन्हें पहनने के लिए पुराने कपडे भी देते हैं। यानी कि दिनभर परिश्रम करने के बाद भी उनकी गरीबी की हालत नहीं सुधरती है। लोग काम ज्यादा करवाकर कम दाम देते हैं। इसका चित्रण छौआ माँ कहानी में हुआ है।¹⁹

सुशीला टाकभौरे ने दलितों की व्यथा वेदना, पीड़ा महसूस कर उनकी निजी समस्याओं के आधार पर कहानियाँ लिखी हैं। मानव

जाति की अन्न, खाना रोटी, कपड़ा, मकान ये आवश्यक बाते होती हैं। ये भी जरूरतें गरीब, निम्न जाति के लोगों की पूर्ण नहीं होती हैं। भूख के कारण उन्हें गंदगी के काम करने पड़ते हैं। लाचार वेबस होना पड़ता है, अपमान सहना पड़ता है, इन सभी बातों को लेखिका ने अपनी संघर्ष कहानी संग्रह की कहानियों के माध्यम से उधृत किया है। इसमें संघर्ष कहानी बहुत महत्वपूर्ण है। इसका पात्र शंकर अत्यंत जिद्दी लड़का है, उनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। बरसात के दिनों में वह गलगल और तीतर पकड़ने की फिराक में रहता। उन्हें पकड़ने के लिए कहीं पर भी चढ़ता और पकड़कर लाता है। उस दिन घर में अच्छी तरकारी हो जाती, मगर साथ में शंकर को गालियाँ भी खूब मिलतीं। 'बदला' कहानी में भी भूख की समस्या को लेखिका ने उजागर किया है। कल्लू अपने माता-पिता और नानी के साथ रहता है। निम्न जाति के हैं, उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। वे अपनी गरीबी के कारण तंगहाल जीवन जी रहे हैं। गाँव की जूठन खाते हैं। गाँव में दलित अछूतों के साथ दुर्व्यवहार और अत्याचार की घटनाएँ घटित होती हैं। इससे वे डरकर रहते हैं। उन्हें उनके दोस्त परेशान करते दिखाई देते हैं- "क्यों कल्लूराम भूख लगी है? जूठन खाने से ज्यादा ताकत आती है क्या?" मानव जाति के लिए भूख एक बहुत बड़ी समस्या है। निम्न जाति के लोग गरीबी की हालत के कारण उच्चवर्णीय के घर गंदगी साफ करने का काम करके वे अपने पेट की भूख मिटाते हैं। जब कल्लू के दोस्तों के साथ झगडा होता है तो उन्हें मंगी की औलाद.. अद्भुत...शुद्र... भिखारी... भिखमगे... हमारी दया पर जीनेवाले.. हमारे टुकड़ों पर पलनेवाले इस तरह के अपमानसूचक वाक्य गरीबी के कारण सहने पड़ते हैं। बच्चे ही देश और समाज का भविष्य हैं। उनका जीवन सुधारना प्रत्येक माँ-बाप का कर्तव्य है। बच्चे थोड़े से बड़े हुए माँ-बाप अधिक से अधिक काम उन्हीं के सिर पर लाद देते हैं। जिससे माँ बाप को आराम तो मिल जाता है लेकिन बेचारे बच्चों का जीवन इन्हीं कामों में उलझ कर रह जाता है। हमारे घर के काम बच्चों के भविष्य में बाधा बनें। इसलिए प्रत्येक माँ-बाप उनकी पढ़ाई में सहयोग दे। तभी समाज का सुधार होगा। समाज के लोगों को अपने बच्चों को शिक्षित करने के लिए एक संस्था बनाये। जहाँ बच्चों को कौन सी परेशानी है उसका जागरूक लोग निराकरण करे। कई बार बी.ए. एम.ए. बच्चों को पढ़-लिख जाने के बाद भी नौकरी नहीं मिलती तब ग्रेजुएट बच्चे सफाई की नौकरी करने को मजबूर होते हैं। पढ़-लिखकर सफाई का काम करने में उन्हें शर्म आती है लेकिन पेट के लिए करना पड़ता है। रामचंद ने एक संस्था बनाई है जो आने वाली पीढ़ियाँ कैसे सुधारे? अपने शिक्षित बच्चों को नौकरियाँ कैसे दे, आदि विषय पर अखिल भारतीय स्तर पर यह संस्था काम करती है- "अब हमारे समाज का भविष्य तभी अच्छा बनेगा जब हम उद्योगों से जुड़ेंगे। हमारे बच्चे उद्योगी व्यवसायी बनेंगे, धन हमारे हाथों में खेलेगा, हम भी लखपति-करोड़पति बनेंगे। हम भी बड़े लोगों, सवर्णों की तरह शान से अपने घर और कोठियाँ बनाएंगे। अपने समाज के साथ जुड़ा शूद्र शब्द हम खुद अपने हाथों से हटा देंगे। हमारे समाज की महिलायें सम्मान के साथ रहेंगी, हमारे बच्चों को खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने-लिखने के खर्च में कभी कोई तंगी नहीं होगी।"¹⁰ अखिल भारतीय वाल्मीकि जागरूक संस्था ने समाज को दिशा और उनके सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए मार्गदर्शन किया। वह व्यवसाय क्यों न छोड़ दिया जाये जिसके कारण लोग हमें घृणा की नजर से देखते हैं? हमें तुच्छ समझते हैं। हम अपनी इस मजबूरी को रहने नहीं देंगे। समाज को पुरानी परंपरा से मुक्त करके नयी राह की खोज करेंगे-जिस पर चलकर हमारा समाज

सम्मान के साथ सिर उठाकर चल सकेगा। बेरोजगारी और गरीबी से हम मुक्त हो सकेंगे इस तरह हमारी अगली पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित बन सकेगा। दलितों को अपने नेताओं, समाज सुधारकों के मार्ग दर्शन पर चलते हुए अपना भविष्य खुद बना लेना चाहिए। जिन लोगों ने तुम्हारे लिए अपने जीवन को दांव पर रखकर तुम्हारे भविष्य के लिए लड़ाई लड़ी तब जाकर तुम्हें स्वतंत्रता, समानता और अधिकार मिले। लालचंद का कहना भी यही है- केवल भूख और प्यास की शांति जीवन नहीं है। निश्चित रास्तों पर आंखें बंद करके चलना, अंधानुकरण करना जीवन नहीं है। जीवित वही है जो सक्रिय है, क्रियाशील है, प्रयत्नशील है, प्रगतिशील है, परिवर्तनशील है। उसकी गति को कौन रोक सकता है जो व्यवसाय हमें आत्मसम्मान दे, आत्मिक बल दे, प्रगति का मार्ग दिखाये-वही हमारे लिए उत्तम है। यह चेतना बाबा साहब अंबेडकर के विचारों से आयी। लोकतंत्र न केवल सरकार का अंग है बल्कि यह सम्पूर्ण मनुष्यों में एक सम्मान की भावना भी रखता है। इसी आदर-सम्मान के भावबोध के साथ न केवल समानता की अनुभूति पैदा हो सकती है बल्कि समतामूलक समाज का निर्माण भी किया जा सकता है। 'समता' किसी भी समाज की मुख्य विशेषता है। बिना समता के कोई भी समाज नहीं हो सकता है केवल व्यक्ति समूह ही होता है। जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं कि जब तक सभी मनुष्यों में समानता की भावना नहीं आ जाती है तब तक हम सामाजिक ही नहीं हैं... "बिना समता के कोई भी समाज नहीं हो सकता है। मुझे यह स्वीकार करने में संकोच होता है कि हम एक भारतीय समाज हैं, क्योंकि हम विभिन्न वर्षों एवं जातियों में विभक्त हैं। हम अलग-अलग मानव समूह हो सकते हैं, समाज नहीं।" सुशीला टाकभौरे का साहित्य भारतीय लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करता है जिसके मूल में समतावादी चेतना है। अनेक विसंगतियों पर चोट करके एक सामान सामाजिक संरचना के निर्माण में इस साहित्य का विशिष्ट योगदान है। मनुष्य-मनुष्य में भेद करने वाले सामाजिक तत्त्वों का वे बहिष्कार करती हैं। उनकी कहानियाँ इस दृष्टि में और भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं क्योंकि उनमें स्त्रीवादी चेतना भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।¹¹

निष्कर्ष

सुशीला टाकभौरे की कहानियाँ दलित स्त्री चेतना का जीवंत दस्तावेज़ हैं। उन्होंने दलित समाज की स्त्रियों के जीवन को केवल पीड़ा और शोषण की कहानी बनाकर नहीं प्रस्तुत किया, बल्कि उसे संघर्ष और परिवर्तन की कथा के रूप में उभारा है। उनकी कहानियाँ यह संदेश देती हैं कि जब तक समाज जाति और लिंग आधारित भेदभाव से मुक्त नहीं होगा, तब तक सच्चा मानवतावाद स्थापित नहीं हो सकता। टाकभौरे की नायिकाएँ इस परिवर्तन की वाहक बनती हैं। वे शिक्षा, आत्मनिर्भरता और आत्म-सम्मान के माध्यम से अपने जीवन की दिशा स्वयं तय करती हैं। यह चेतना दलित स्त्री को परंपरागत गुलामी से मुक्त करती है और उसे सामाजिक, राजनीतिक और मानसिक स्तर पर स्वतंत्र बनाती है। सुशीला टाकभौरे ने दलित स्त्री के भीतर छिपी संभावनाओं को पहचाना और उन्हें समाज के सामने एक नई दृष्टि के साथ प्रस्तुत किया। उनकी कहानियाँ न केवल दलित विमर्श का विस्तार करती हैं, बल्कि स्त्री विमर्श को भी नई गहराई प्रदान करती हैं। इस प्रकार, उनकी रचनाएँ हिन्दी साहित्य में दलित स्त्री चेतना की एक सशक्त आवाज़ हैं, जो न केवल शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध का प्रतीक हैं, बल्कि समानता और न्याय के नए सामाजिक स्वप्न का भी परिचायक हैं।

संदर्भ

1. तुम्हें बदलना ही होगा, पृ.49
2. वही, पृ. 56
3. वही, पृ.58
4. वही, पृ.30
5. वही, पृ.127
6. वही, पृ.131
7. वही, पृ.73
8. वही, पृ.99
9. वही, पृ.99
10. वही, पृ.115
11. वही, पृ.115

Creative Commons (CC) License

This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.